खनिज विकास लिमिटेड

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

(बी. पी. सिन्हा, सी. जे., पी. बी. गजेन्द्रगडकर, के. सुब्बा राव, के. सी. दास गुप्ता और जे. सी. शाह, जे. जे.)

मौलिक अधिकार- राज्य द्वारा कानून द्वारा लगाया गया प्रतिबन्ध-तर्कसंगतता -वस्तुनिष्ठ परीक्षण - न्यायालय के कर्तव्य- संवैधानिक वैधानिकता- बिहार अभ्रक अधिनियम, 1947, धारा 25(1) (ग) -भारत का संविधान अनुछेद-19(1)(च)(छ) और 19(5) और (6).

राजस्व विभाग में बिहार सरकार के सचिव ने याचिकाकर्ता कंपनी को नोटिस जारी किया, जो खनन पट्टे की पट्टेदार थी और उस पर बिहार अभ्रक अधिनियम की धारा 10, 12 और 14 के उल्लंघन का आरोप लगा था और इसका कारण बताने का आह्वान किया कि अभ्रक खनन के लिए साल दर साल जारी किये जा रहे इसके लाइसेंस को रद्द करने के लिए कार्रवाई क्यों नहीं की जानी चाहिए । कंपनी ने सरकार से अधिनियम के प्रावधनों के कथित उल्लंघन का विवरण मांगा जो प्रस्तुत किया गया था । कंपनी ने आरोपों से इनकार करते हुए सरकार को एक लिखित अभ्यावेदन भेजा । उक्त प्रतिनिधित्व के दो साल बाद सरकार ने एक अधिसूचना जारी कर इसे अधिनियम की धारा 25(I)(ग) के तहत रद्द कर दिया।

कंपनी ने संविधान के अनुच्छेद- 32 के तहत लाइसेंस को रद्द करने के आदेश को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण रिट जारी करने के लिए और रद्द करने के उक्त आदेश को प्रभावी करने से रोकने का निर्देश देने वाला एक परमादेश रिट जारी करने के लिए माननीय उच्चतम न्यायालय का रुख किया, इस आधार पर कि सरकार ने अवैध रूप से और दुर्भावनापूर्ण तरीके से काम किया और याचिकाकर्ता के अनुच्छेद 19(1) उपखण्ड (च) और (छ) के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया और बिहार अभ्रक अधिनियम, 1947 की धारा 25(I)(ग) उक्त अधिकार पर एक अनुचित प्रतिबंध के रूप में कार्य करता है और भले ही उक्त धारा ने उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया हो, उस धारा के दूसरे परंतुक के अर्थ के भीतर कारण बताने का उचित अवसर दिए बिना पट्टा रद्द करने के सरकार के आदेश ने उनके मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया है।

यह माना गया कि बिहार अभ्रक अधिनियम की धारा 25(I)(ग) संविधान के अनुच्छेद 19(I)(च) और (छ) के तहत मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध नहीं लगाता है।

वे प्रतिबंध जो राज्य संविधान के अनुच्छेद 19 (5) और (6) के तहत आम जनता के हित में नागरिक के मौलिक अधिकार पर लगा सकती है उचित होने चाहिए और मात्र कार्यपालिका के अनियंत्रित विवेक पर निर्भर नहीं होना चाहिए।

यह न्यायालय का कर्तव्य है कि तर्कसंगतता की अवधारणा और सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए निर्णय लें जो कि मद्रास राज्य बनाम वी.जी.राव के वाद में निर्धारित किया गया है, यदि कोई विशेष कानून तर्कसंगतता के वस्तुनिष्ठ परीक्षण को संतुष्ट करता है।

बिहार अभ्रक अधिनियम की वैधानिक शर्तें, जिसके अधीन जो लाइसेंस दिए गए हैं, वे स्पष्ट रूप से उचित है और खनन उद्योग को विनियमित करने के लिए आवश्यक है। अधिनियम के धारा- 25 के तहत सरकार को प्रदान किए गए लाइसेंस को रद्द करने की शक्ति का उद्देश्य केवल उन प्रावधनों को लागू करना है जो जनता के हित में अधिनियमित किए गए हैं और उस शक्ति का प्रयोग वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के आधार पर और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार किया जा सकता है ।

सामान्य प्रस्ताव है कि जब भी विवेकाधीन शक्ति यदि किसी राज्य सरकार या केंद्र सरकार को कानून द्वारा प्रदान किया जाता है, तो उक्त कानून को अनिवार्य रूप से मौलिक अधिकार पर एक उचित प्रतिबंध के रूप में काम करना चाहिये, जो मौलिक अधिकारों की अवधारणा को इस सरल कारण से नकारता है कि राज्य की कार्यवाही के खिलाफ़ मौलिक अधिकारों की गारंटी है। इसीलिए, राज्य सरकार को ऐसी शक्ति प्रदान करना, न कि किसी अधीनस्थ अधिकारी को, केवल उन विचारों में से एक है जो किसी विशेष कानून की तर्कसंगतता पर न्यायिक निर्णय में प्रवेश कर सकते हैं और उस कानून की तर्कसंगतता का निर्णय केवल इस आधार पर किया जाता है कि उन परिस्थितियों का संचयी प्रभाव जिनके तहत ऐसी शक्ति प्रदान की जाती है।

उचित अवसर की अवधारणा लोचदार है और आसान और सटीक परिभाषा के लिए अति संवेदनशील नहीं है। परिस्थितियों के एक समूह के तहत जो उचित अवसर है वह विभिन्न परिस्थितियों में उचित होने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक मामले में यह सुनिश्चित करना न्यायालय का कर्तव्य है कि उसके सामने समग्र तस्वीर को ध्यान में रखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि क्या किसी व्यक्ति को कारण बताने के लिए उचित अवसर दिया गया है।

न्यायाधिकरण या प्राधिकरण जिन्हें अर्द्ध न्यायिक कार्य सौंपा गया है किसी भी अन्य न्यायिक न्यायाधिकरण की तरह, पूर्वाग्रह के सिद्धांत को नियंत्रित करने वाले प्रासंगिक सिद्धांतों से बंधे होते हैं। तत्काल मामले में राजस्व मंत्री का निर्णयों के अंदर व्यक्तिगत

पूर्वाग्रह था और उन्हें जांच शुरू करने या लाइसेंस रद्द करने में भाग नहीं लेना चाहिए था।
अधिनियम के धारा 25(I)(ग) के तहत सरकार को कार्यवाही हेतु सक्षम बनाने के लिए न तो आवश्यक शर्तें स्थापित की गई है और ना ही सरकार ने धारा 25(I) के दूसरे परन्तुक के अर्थ के अनुसार उचित अवसर प्रदान किया है।

मद्रास राज्य बनाम वी० जी० राव[1] अनुसरण किया गया ठाकुर रघुवीर सिंह बनाम कोर्ट ऑफ़ वार्डस, अजमेर[2] अप्रयोज्य धारित किया गया

मूल क्षेत्राधिकार : 1956 की याचिका संख्या 159 मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद- 32 के तहत याचिका।
याचिकाकर्ताओं की ओर से :- एन० सी० चटर्जी और डी० एन० मुखर्जी ।
बिहार सरकार की तरफ से :- महाबीर प्रसाद,बिहार राज्य के महाधिवक्ता,
प्रत्यर्थी की तरफ से :- बजरंग सहाय और आर० सी० प्रसाद।
15 दिसम्बर 1959 ।
न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुब्बा राव द्वारा दिया गया था ।

प्रस्तुत याचिका संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत खनिज विकास लिमिटेड द्वारा बिहार राज्य के खिलाफ दायर की गई है और दूसरी बिहार सरकार के 7 सितंबर,1955 के याचिकाकर्ता के लाइसेंस को रद्द करने के आदेश को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण रिट जारी करने के लिए दायर की गई है और रद्द करने के उक्त आदेश को प्रभावी करने से रोकने का निर्देश देने वाला एक परमादेश रिट जारी करने के लिए।
एक राजा बहादुर कामाक्ष्य नारायण सिंह (इसके बाद मालिक कहा जाएगा) बिहार राज्य के हज़ारीबाग जिले में रामगढ़ और सेरामपुर सम्पदा के मालिक थे। 29 दिसंबर,1947 को, उक्त मालिक ने 999 वर्षों की अवधि के लिए 3,026 गांवों के सभी खनिजों के लिए मिनरल डेवलपमेंट लिमिटेड (इसके बाद कंपनी कहा जाएगा) के पक्ष में एक खनन पट्टा निष्पादित किया। 3 जनवरी, 1951 को या उसके आसपास, डिप्टी कमिश्नर, हज़ारीबाग़ ने कंपनी को के तहत फॉर्म 'बी' में नंबर एचएल 261-एच वाला लाइसेंस प्रदान किया। अभ्रक खनन के लिए बिहार अभ्रक अधिनियम, 1947 (इसके बाद इसे अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 6 के तहत फॉर्म 'B' में नंबर H.L. 261-H लाइसेंस प्रदान किया। लाइसेंस को संबंधित प्राधिकारी द्वारा साल-दर-साल नवीनीकृत किया गया था और अंतिम नवीनीकरण 31 दिसंबर, 1954 को समाप्त हो गया था। राजस्व विभाग में

बिहार सरकार के सचिव ने 7 मार्च, 1953 को कंपनी को अधिनियम की धारा 10, 12 और 14 के उल्लंघन का आरोप लगाते हुए एक नोटिस जारी किया, कि उक्त नोटिस की प्राप्ति के 15 दिनों के भीतर कारण बताएं कि कंपनी के पक्ष में जारी लाइसेंस को रद्द करने की कार्रवाई क्यों नहीं की जानी चाहिए। 20 मार्च, 1953 को पत्र द्वारा, कंपनी ने सरकार के सचिव, राजस्व विभाग, बिहार से अनुरोध किया कि वह कंपनी को अधिनियम के प्रावधानों के कथित उल्लंघन का विवरण प्रदान करें। एक अनुस्मारक भेजे जाने के बाद, कंपनी को सरकार ने अपने पत्र दिनांक 1 मई, 1953 द्वारा विवरण प्रदान किया था। 17 मई, 1953 को या उसके आसपास, कंपनी ने सरकार को एक लिखित अभ्यावेदन भेजा जिसमें उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया गया और स्पष्टीकरण दिया कि कंपनी ने अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन कैसे किया। इस पत्र के बाद सरकार और कंपनी के बीच कोई पत्राचार नहीं हुआ। लेकिन 7 सितंबर, 1955 को, यानी उक्त अभ्यावेदन के दो साल बाद, सरकार ने एक अधिसूचना जारी कर कंपनी का 1951 का लाइसेंस नंबर 261-H, रद्द कर दिया। इस अधिसूचना का परिणाम यह हुआ कि कंपनी को उक्त मालिक से पट्टे पर ली गई भूमि के बड़े हिस्से में खनन कार्य करने से रोक दिया गया। कंपनी ने अपनी याचिका में कहा है कि उसने खनन पट्टा प्राप्त करने के लिए लगभग 16 लाख रुपये की बड़ी राशि का निवेश किया था और खदानों की खोज और विकास में काफी राशि खर्च की, सरकार के मनमाने कृत्य से खदानों में काम नहीं हो सका, बड़ी संख्या में मजदूरों को रोजगार से बाहर कर दिया गया और नतीजा यह हुआ कि उसे भारी नुकसान उठाना पड़ा। इसने पहले से उल्लेखित राहतों के लिए अन्य कारणों के अलावा वर्तमान याचिका दायर की है, कि सरकार ने अवैध रूप से और दुर्भावना से काम किया और संविधान के अनुच्छेद 19(1) की उप अनुच्छेद (f) और (g) के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया है। याचिका के पहले प्रतिवादी बिहार राज्य हैं और दूसरे प्रतिवादी राजस्व विभाग में बिहार सरकार के अतिरिक्त सचिव हैं। उन्होंने सरकार के खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए एक जवाब दाखिल किया और विशेष रूप से कहा कि उन्होंने अपने अधिकारों के भीतर काम किया था और अधिनियम के प्रावधानों का कड़ाई से अनुपालन करते हुए लाइसेंस रद्द कर दिया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री चटर्जी के तर्कों को मोटे तौर पर निम्नलिखित चार शीर्षकों के तहत तैयार किया जा सकता है: (i)बिहार अभ्रक (संशोधन)अधिनियम,1949 द्वारा संशोधित बिहार अभ्रक अधिनियम, 1947, संवैधानिक क्षमता के अभाव के कारण अधिकार से बाहर है ; (ii) अधिनियम के प्रावधान 1948 के केंद्रीय अधिनियम 53 के प्रावधानों के प्रतिकूल हैं, और इसलिए, इस तरह की प्रतिकूलता की सीमा तक पूर्व

अधिनियम को बाद के अधिनियम के अनुरूप होना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप अधिनियम के तहत लाइसेंस देने के प्रावधानो का कोई कानूनी प्रभाव नहीं होगाइस स्कैप; (iii) याचिकाकर्ता के पास संविधान की धारा 19(1)(f) और (g) के तहत संपत्ति के अधिग्रहण, धारण और निपटान के मौलिक अधिकार है और उसके संबंध में कोई व्यवसाय या व्यापार चलाने का, तथा अधिनियम की धारा 25(1)(c) उक्त अधिकारों पर एक अनुचित प्रतिबंध के रूप में कार्य करता है और इसीलिए शून्य है ; और (iv) भले ही उक्त धारा ने उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया हो, उस धारा के दूसरे परंतुक के अर्थ के भीतर कारण बताने का उचित अवसर दिए बिना पट्टा रद्द करने के सरकार के आदेश ने उनके मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया है। पहले दो विवादों से हमें विचलित होने की जरूरत नहीं है; क्योंकि, याचिका का निपटारा पिछले दो तर्कों के आधार पर किया जा सकता है।

इसलिए, पहला सवाल यह है कि क्या है अधिनियम के धारा 25 याचिकाकर्ता के संविधान के अनुच्छेद 19(1) की उप अनुच्छेद (f) और (g) के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

संविधान के उक्त प्रावधान हैं:

अनुच्छेद 19: (1) सभी नागरिकों को अधिकार होगा-

(च) संपत्ति अर्जित करना, धारण करना और निपटान करना; और

(छ) कोई पेशा अपनाना, या कोई व्यवसाय, व्यापार या कारोबार करना।"

अनुच्छेद 19(1), की उप खण्ड (च) और (छ) के तहत प्रत्येक नागरिक को संपत्ति अर्जित करने, धारण करने और उसका निपटान करने और कोई भी पेशा अपनाने या कोई व्यवसाय, व्यापार या व्यवसाय करने का अधिकार है। लेकिन अनुच्छेद 19 का खण्ड (5) और (6) राज्य को आम जनता के हित में प्रतिबंध लगाने वाला कानून बनाने के लिए अधिकृत करता है, लेकिन लगाए गए प्रतिबंध उचित होने चाहिए। तर्कसंगतता की अवधारणा को मद्रास राज्य बनाम वी. जी. राव में पतंजलि शास्त्री, सी०जे० द्वारा स्पष्ट रूप से समझाया गया है, जो निम्नानुसार है :

"इस संदर्भ में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि तर्कसंगतता का परीक्षण, जहां भी निर्धारित हो, प्रत्येक व्यक्तिगत क़ानून पर लागू किया जाना चाहिए, और कोई अमूर्त मानक, या तर्कसंगतता का सामान्य पैटर्न सभी मामलों पर लागू नहीं किया जा सकता है। जिस अधिकार के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है उसकी प्रकृति, लगाए गए प्रतिबंधों का अंतर्निहित उद्देश्य, उस बुराई की सीमा और तात्कालिकता जिसका निवारण किया जाना है, लगाए जाने की असंगतता, उस समय की मौजूदा स्थितियाँ, सभी को न्यायिक क्षेत्र में शामिल किया जाना चाहिए निर्णय।"

ये टिप्पणियाँ, यदि हम बड़े सम्मान के साथ कह सकें, सही सिद्धांत प्रस्तुत करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उपरोक्त विचारों और ऐसे अन्य विचारों को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लेना इस न्यायालय का कर्तव्य है कि क्या कोई विशेष क़ानून "तर्कसंगतता" के उद्देश्य परीक्षण को पूरा करता है। सामान्य सिद्धांत पर विवाद न करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने अपनी दलीलों के समर्थन में ठाकुर रघुबीर सिंह बनाम कोर्ट ऑफ वार्ड्स, अजमेर में इस न्यायालय के फैसले पर दृढ़ता से भरोसा किया। उस मामले में तथ्य थे: अजमेर किरायेदारी और भूमि रिकॉर्ड अधिनियम (1950 का XLII) के धारा-112 में प्रावधान है कि "यदि कोई मकान मालिक आदतन इस अधिनियम के तहत किरायेदार के अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो वह अजमेर सरकार वार्ड विनियमन, 1888 (1888 का I) की धारा 7 में कुछ होने के बावजूद, उक्त विनियम की धारा 6 के अर्थ के अंतर्गत 'एक मकान मालिक जो अपनी संपत्ति का प्रबंधन करने के लिए अयोग्य है' माना जाएगा और उसकी संपत्ति कोर्ट ऑफ वार्ड्स के पर्यवेक्षण के तहत ली जाने के लिए उत्तरदायी होगी।" इस प्रश्न का निर्धारण कि क्या मकान मालिक ने आदतन अपने किरायेदारों के अधिकारों का उल्लंघन किया है, कोर्ट ऑफ वार्ड्स पर छोड़ दिया गया था। याचिकाकर्ता, जिसकी संपत्ति कोर्ट ऑफ वार्ड्स ने अपने कब्जे में ले ली थी, ने कोर्ट ऑफ वार्ड्स को प्रदत्त शक्ति की वैधता पर सवाल उठाया। इस न्यायालय ने माना कि उक्त धारा संपत्ति में अधिकारों पर एक अनुचित प्रतिबंध होने के कारण शून्य थी क्योंकि प्रतिबंध ने उस अधिकार का आनंद कार्यपालिका के विवेक पर निर्भर कर दिया था। न्यायमूर्ति महाजन, द्वारा संप्रेक्षित किया गया कि : "जब कोई कानून किसी व्यक्ति को केवल कार्यकारी अधिकारी के व्यक्तिपरक निर्धारण पर अनिश्चित काल के लिए उसकी संपत्ति के कब्जे से वंचित कर देता है, तो ऐसा कानून, किसी भी निर्माण पर नहीं हो सकता है शब्द "उचित" को उस अभिव्यक्ति के अंतर्गत आने के रूप में वर्णित किया जाना चाहिए, क्योंकि यह कार्यपालिका के संतुष्टि और विवेक पर निर्भर करके मौलिक अधिकार को पूरी तरह से नकारात्मक करता है, इससे प्रभावित नागरिक को न्यायालय में इसके विपरीत स्थापित करने के लिए सहारा लेने का कोई अधिकार नहीं है।"

उस स्थिति में एस का संयुक्त संचालन। 1950 के अधिनियम XLII के धारा- 112 और 1888 के अधिनियम 1 के प्रावधान यह थे कि कोर्ट ऑफ वार्ड्स अपने विवेक से और अपने व्यक्तिपरक विवेकाधिकार के आधार पर एक मकान मालिक की संपत्ति का अधीक्षण ग्रहण कर सकता है जो आदतन अपने किरायेदारों के अधिकारों का उल्लंघन करता है। अधिनियम ने इस प्रश्न का निर्धारण करने के लिए कोई मशीनरी भी प्रदान नहीं की कि क्या एक मकान मालिक एक ऐसा व्यक्ति था जो आदतन अपने किरायेदारों

के अधिकारों का उल्लंघन करता था। यहां तक कि कोर्ट ऑफ वार्ड्स द्वारा अधीक्षण की धारणा के लिए पूर्ववर्ती शर्त , अर्थात, मुख्य आयुक्त की पिछली मंजूरी भी पूरी तरह से उनके विवेक पर निर्भर था। यह देखा जाएगा कि उस अधिनियम के तहत पूरा सवाल बिना किसी तंत्र के प्रावधान के कार्यपालिका के बेलगाम विवेक पर छोड़ दिया गया था। इसकी कार्यवाही के लिए आधार का पता लगाने के लिए वह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं हो सकता है क्योंकि वे उस निर्णय में इस न्यायालय द्वारा विचार किए गए लोगों से भौतिक मामलों में भिन्न हैं।

इसलिए, छोटा सवाल यह है कि क्या अधिनियम की धारा 25 संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और (छ) के तहत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है। यह स्वीकार किया जाता है कि राज्य नागरिकों के खनिज अधिकारों के उपभोग के संबंध में जनता के हित में प्रतिबंध लगाने वाला कानून बना सकता है; लेकिन शिकायत यह है कि वह कानून जो राज्य को अपने अनियंत्रित विवेक से ऐसे क्षेत्र के मालिक या पट्टेदार को अपनी भूमि या पट्टे के ब्याज का आनंद लेने से रोकने या स्थायी रूप से या अनिश्चित अवधि के लिए अपने खनन कार्यों को जारी रखने में सक्षम बनाता है, अनुचित है। इस प्रकार कहा गया है कि तर्क में संभाव्यता है। लेकिन आइए हम कानून को और अधिक बारीकी से देखें ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या यह इस तरह की बुराई से ग्रस्त है। यह अधिनियम वर्ष 1947 में पारित किया गया था और समय-समय पर इसमें संशोधन किया गया था। अधिनियम का घोषित उद्देश्य "बिहार प्रांत में अभ्रक के कब्जे और परिवहन और व्यापार को विनियमित करना" है। यह आवश्यक था, संभवतः, अभ्रक की कमी के कारण और औद्योगिक क्षेत्र में इसका महत्व, और घरेलू खपत और विदेशी निर्यात को विनियमित करने का यही कारण है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने स्थिति का विरोध नहीं किया, और वास्तव में स्वीकार कर लिया कि याचिकाकर्ता के खनन कार्यों पर वैध रूप से उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। अधिनियम की धारा 4 अभ्रक को बिना लाइसेंस, मालिक के प्रमाण पत्र या खुदाई के परमिट के रखने और उसमें व्यापार करने पर प्रतिबंध लगाती है। धारा 5 और 6 मालिक को प्रमाण पत्र , खनिक या विक्रेता का लाइसेंस प्रदान करने के लिए एक तंत्र निर्धारित करते हैं। धारा 10 से 12 लाइसेंसधारियों और पंजीकृत मालिक के लेखा रखने और उन्हें निरीक्षण के लिए पेश करने के मामले में कर्तव्यों को परिभाषित करता है । धारा 14

अभ्रक को बिना पास के एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाने को प्रतिबंधित करती है । धारा 17,19 और 21-ए अधिनियम के प्रावधानों और इसके तहत बनाए गए नियम के उल्लंघन के लिए दंड लगाती हैं । धारा 22 से 24 तक विविध मामलों के साथ, जैसे कि एक पुलिस अधिकारी के बिना वारंट के इस अधिनियम के तहत दोषी व्यक्तियों को गिरफ्तार करने की शक्ति, बिना पास आदि के हटाये अभ्रक को खोज करना, जब्त करना । विद्वान वकील के मुख्य तर्क धारा 25 के प्रावधानों पर निर्भर करता है। यह आवश्यक है कि पूरा खंड पढ़ें, जो इस प्रकार हैः

धारा 25."(1) राज्य सरकार किसी भी अनुज्ञप्तिधारी या पंजीकृत स्वामी लाइसेंस या मालिक के प्रमाण पत्र को रद्द कर सकती है जो

(क) अपने लाइसेंस या मालिक के प्रमाण पत्र की अनुमति देता है, जैसा भी मामला हो, किसी की ओर से उपयोग किया जाना उसे खरीदने या रखने के अधिकार के रूप में अन्य व्यक्ति अभ्रक खदान से निकाले गए अभ्रक को रखना या बेचना या अभ्रक के ढेर से, या

(ख) ऐसा व्यक्ति होना जिसके पास खनिक का लाइसेंस हो। एक खदान से अभ्रक निकालने के लिए दिया गया था जिनके संकेत उसके लाइसेंस पर समर्थित नहीं हैं, या

(ग) पालन करने में बार-बार विफलता का दोषी है इस अधिनियम या नियमों के किसी भी अन्य प्रावधान इसके तहत बनाया गया, या

(घ) भारतीय दंड संहिता की धारा XVII अध्याय के अधीन किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है।

अभ्रक का पैक्टः बशर्ते कि लाइसेंस या मालिक का प्रमाण पत्र केवल दोषसिद्धि के कारण रद्द नहीं किया जाएगा जिनसे अनुज्ञप्तिधारी या पंजीकृत स्वामी को अपील या पुनरीक्षण का कोई अधिकार नहीं है; बशर्ते कि लाइसेंस या मालिक का प्रमाण-पत्र तब तक रद्द नहीं किया जाएगा जब तक कि लाइसेंसधारी या मालिक को

प्रस्तुत किया गया हो और उनको कारण दिखाने के लिए उचित अवसर इस आशय का दिया गया हो कि, क्यों नहीं उसका लाइसेंस रद्द नहीं किया जाए।

(2) एक नया लाइसेंस या मालिक का प्रमाण पत्र राज्य की पूर्व मंजूरी के बिना सरकार, किसी भी लाइसेंसधारी या पंजीकृत व्यक्ति को प्रदान नहीं की जाए । मालिक जिसका लाइसेंस या मालिक का प्रमाण पत्र इस धारा के तहत रद्द कर दिया गया है। यह धारा सबसे गंभीर सजा का प्रतीक है जो अधिनियम के तहत किसी लाइसेंसधारी या लाइसेंसधारक को दी जा सकती है । यह राज्य सरकार को सक्षम बनाता है कि मालिक का लाइसेंस रद्द करें। सत्ता राज्य में सर्वोच्च कार्यकारी को सौंपी जाती है जिसपर आम तौर पर बिना किसी बाहरी विचार के निष्पक्षता और जनता के हित में अपने कर्तव्यों का पालन करने पर भरोसा किया जा सकता है । यह धारा राज्य सरकार को प्रत्येक मामले के तथ्यों पर लागू करने के लिए स्पष्ट रूप से सुनिश्चित करने योग्य मानक प्रदान करता है । धारा- 25 (1) के खंड (ए), (बी), (सी) और (डी) लाइसेंसधारी द्वारा किए जाने वाले दुर्व्यवहार और विशेष रूप से किए जाने वाले चूक की प्रकृति को आकर्षित करने वाले दंडात्मक प्रावधानों को पर्याप्त और स्पष्ट रूप से प्रावधानित करती है। खंड (सी) जिसके साथ हम सीधे तौर पर चिंतित हैं,अंतिम चरण का प्रतीक है जिसका सहारा राज्य सरकार खनन उद्योग के क्षेत्र से अड़ियल ऑपरेटर को ख़त्म करने के लिए कर सकती है, बशर्ते वह अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों, धारा के अन्य खण्डों में उल्लिखित नियमों के दृष्टिकोण से बार-बार विफलता का दोषी हो । धारा- 25 (1) का खंड (ग) के अनुसार राज्य सरकार का विवेकाधिकार दो महत्वपूर्ण प्रतिबंधों से घिरा हुआ हैः अर्थात्., (i) इसके तहत, अधिनियम या बनाए गए नियमों के प्रावधानों का पालन करने में विफलता बार-बार होनी चाहिए न कि छिटपुट या केवल एक, अर्थात, चूककर्ता अवश्य ही अड़ियल होना चाहिए

(ii) लाइसेंस रद्द करने से पहले राज्य सरकार को उचित खर्च उठाना चाहिए उसका लाइसेंस रद्द नहीं किया जाना चाहिए। इसके अलावा, लाइसेंस रद्द करने से प्रतिबंध का प्रभाव नहीं पड़ता है। बिना राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के उसे लाइसेंस नहीं दिया जाएगा। उपरोक्त परिस्थितियों में, क्या यह कहा जा सकता है कि यह धारा याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों पर अनुचित प्रतिबंध लगाती है? जिन वैधानिक शर्तों के अधीन

लाइसेंस दिया जाता है, वे स्पष्ट रूप से खनन उद्योग को विनयमित करने के लिए उचित और आवश्यक हैं । जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, अधिनियम के प्रावधान केवल एक लाइसेंसधारी को खाता रखने, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करने, उसे बिना पास के खेतों से अभ्रक निकालने से रोकने और नियमों का उल्लंघन करने पर जुर्माना लगाने के लिए मजबूर करने के लिए निर्मित किये गये हैं । कहा जाता है कि अधिनियम की धारा-25 के तहत राज्य सरकार को दिए गए लाइसेंस को रद्द करने की शक्ति में एकमात्र बुराई निहित है। राज्य सरकार को दी गई शक्ति केवल अधिनियम के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए है, अर्थात उक्त प्रावधानों को लागू करने के लिए, जो जनता के हित में अधिनियमित किए गए हैं। और वह शक्ति, जैसा कि हमने संकेत दिया है, वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के आधार पर और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार प्रयोग की जा सकती है। इसलिए, हम नहीं मान सकते कि अधिनियम की धारा- 25(1) (ग) संविधान के अनुच्छेद-19 (1) (च) और (छ) के तहत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों पर अनुचित प्रतिबंध लगाती है ।

वाद के इस हिस्से को छोड़ने से पहले, हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि हमारा यह प्रस्ताव रखने का इरादा नहीं है कि जब भी किसी राज्य सरकार या केंद्र सरकार को कानून द्वारा विवेकाधीन शक्ति प्रदान की जाती है, तो उक्त कानून आवश्यक रूप से कार्य करना चाहिए । मौलिक अधिकार पर उचित प्रतिबंध ऐसा सामान्य प्रस्ताव मौलिक अधिकारों की अवधारणा को इस साधारण कारण से नकारात्मक करता है कि मौलिक अधिकारों की गारंटी राज्य की कार्यवाही के विरुद्ध होती है । इसलिए, किसी अधीनस्थ अधिकारी को नहीं बल्कि राज्य सरकार को ऐसी शक्ति प्रदान करना उन विचारों में से एक है जो किसी विशेष कानून की तर्कसंगतता पर न्यायिक फैसले में शामिल हो सकते हैं और उस कानून की तर्कसंगतता पर ही निर्णय लिया जा सकता है ।

अगला सवाल यह है कि क्या राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा- 25(1) (ग) के प्रावधानों का पालन किया ? अधिनियम के दूसरे परंतुक के साथ पढ़ने पर उक्त प्रावधान के तहत राज्य सरकार लाइसेंसधारी को कारण बताने का उचित अवसर प्रदान करने के बाद कि क्यों नहीं उसका लाइसेंस रद्द किया जाना चाहिए, लाइसेंस रद्द कर सकती है। यह परंतुक राज्य सरकार को अर्द्ध-न्यायिक शक्ति प्रदान करता है । “समुचित अवसर” की

अवधारणा एक लोचदार अवधारणा है और आसान और सटीक परिभाषा के लिए अतिसंवेदनशील नहीं है। संविधान के अनुच्छेद- 311 पर वादों के निर्णयों में अलग-अलग स्थितियों में उक्त सिद्धांत के अनुप्रयोगों का चित्रण दिया गया है । परिस्थितियों के एक श्रेणी/समुच्चय के तहत जो उचित अवसर है, उसे विभिन्न परिस्थितियों में उचित होने की आवश्यकता नहीं है । अधिनियम की धारा-25(1) के दुसरे परंतुक के अर्थों के अंदर न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह समग्र मामले को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक मामले का पता लगाए। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या किसी व्यक्ति को "कारण दिखाने" के लिए उचित अवसर दिया गया है । न्यायाधिकरण या प्राधिकरण जिन्हें अर्ध-न्यायिक कार्य-कलापों सौंपे गए हैं किसी भी अन्य न्यायिक न्यायाधिकरण की तरह "पूर्वाग्रह के सिद्धांत" को नियंत्रित करने वाले प्रासंगिक सिद्धांतों से बंधे हैं । यह न्यायालय गुल्लापल्ली नागेश्वर राव बनाम आंध्रप्रदेश राज्य के हाल के ही एक निर्णय में अवलोकन की कि,

" “पूर्वाग्रह के सिद्धांत” को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत न्यायिक न्यायाधिकरण अच्छी तरह से स्थापित हैं और वे ये हैं:

(i) कोई भी व्यक्ति अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश नहीं होगा।

(ii) न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि स्पष्ट रूप से और निस्संदेह रूप से दिखना भी चाहिए ।

दोनों सिद्धांतों का परिणाम यह है कि यदि किसी न्यायिक निकाय का कोई सदस्य किसी विवाद के किसी भी पक्ष में या उसके खिलाफ पूर्वाग्रह (चाहे वित्तीय या अन्य) के अधीन है , या ऐसी स्थिति में है कि पूर्वाग्रह होना ही चाहिए मान लिया जाए कि उसका अस्तित्व है, तो उसे निर्णय में भाग नहीं लेना चाहिए या न्यायाधिकरण में बैठना नहीं चाहिए” ; और यह कि" जांच के विषय-वस्तु में कोई भी प्रत्यक्ष आर्थिक हित, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, एक न्यायाधीश को अयोग्य ठहरा देगा, और कोई भी हित, हालांकि आर्थिक नहीं है, उसका वही प्रभाव होगा, यदि वह उचित संदेह पैदा करने के लिये पर्याप्त रूप से पर्याप्त है । उक्त सिद्धांत अधिकारियों पर समान रूप से लागू होते हैं, हालांकि वे न्याय की अदालतें या न्यायिक न्यायाधिकरण नहीं हैं, जिन्हें दूसरों के

अधिकारों का निर्णय लेने में न्यायिक रूप से कार्य करना पड़ता है , यानी ऐसे अधिकारी जो अर्द्ध-न्यायिक क्रिया-कलाप का अधिकार रखते हैं । उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाने वाला पहला प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले में राज्य सरकार के लिए काम करने वाले प्राधिकरण-यह स्वीकार किया जाता है कि राज्य के तत्कालीन राजस्व मंत्री ने याचिकाकर्ता के खिलाफ व्यक्तिगत पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर विवादित आदेश दिया था। दूसरा, हमें यह पता लगाने के लिए अभिलेख की जांच करनी होगी कि क्या याचिकाकर्ता को कारण दिखाने का उचित अवसर दिया गया था या क्या उसे उस अधिकार से वंचित किया गया था। तीसरा, हमें यह पता लगाना होगा कि क्या राज्य सरकार ने पाया कि याचिकाकर्ता अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के किसी भी अन्य प्रावधान का बार-बार पालन करने में विफल रहने का दोषी था और उस निष्कर्ष के आधार पर लाइसेंस रद्द कर दिया गया । यह उल्लेख किया जा सकता है कि विद्वान महाधिवक्ता, जो राज्य सरकार की ओर से हमारे सामने पेश हुए, ने प्रस्तुत किया कि राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा- 25 (1)(ग) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग किया । राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्ता को कारण बताने का नोटिस 7 मार्च, 1953 को जारी किया गया । याचिकाकर्ता के पक्ष में दिया गया लाइसेंस राज्य सरकार के नेतृत्व में 1 सितंबर, 1955 की अधिसूचना द्वारा रद्द कर दिया गया था । मान लीजिए, इस अवधि के दौरान श्री कृष्ण बल्लव सहाय बिहार सरकार के राजस्व मंत्री थे, और वे खानों से संबंधित वाले विभाग के प्रभारी थे। उक्त मंत्री और हजारीबाग जिले में रामगढ़ और सेरामपुर संपदाओं के पूर्व जमींदार श्री राजा बहादुर कामाक्ष्या नारायण सिंह के बीच राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता थी, जिन्होंने संबंधित भूमि याचिकाकर्ता को पट्टे पर दिया था। राज्य का मामला यह है कि उक्त पट्टा केवल उक्त मालिक के लिए बेनामी था और याचिकाकर्ता का मामला यह है कि मालिक की पत्नी रानी ललिता राज्य लक्ष्मी देवी कंपनी के पंजीकृत शेयरधारक हैं। यह प्रश्न कि पट्टा केवल स्वामी के लिए बेनामी है या नहीं, हजारीबाग अधीनस्थ न्यायाधीश की अदालत की फाइल पर लंबित 1954 के स्वामित्व वाद संख्या 53 में विवाद में है । इसलिए, हम इस मामले के उद्देश्य के लिए यह मान लेंगे कि स्वामित्व के प्रश्न पर विवाद है, राज्य सरकार इस बात पर जोर देती है कि पट्टा केवल मालिक के लिए बेनामी है और याचिकाकर्ता जो वास्तविक पट्टेदार होने का दावा करता है और मालिक की पत्नी केवल कंपनी की पंजीकृत शेयरधारक है। जो भी

कथन सही हो, स्वामी, प्रत्यक्ष रूप से या अपनी पत्नी के कारण, कंपनी में बहुत रुचि रखता है, किसी भी तरह से, सरकार का मामला यह है कि वह मालिक है। याचिका में आरोप लगाया गया है कि उक्त मालिक ने राजस्व का विरोध किया, 1952 में गिरिडीह और बरकगाँव निर्वाचन क्षेत्र में बिहार विधानसभा के लिए हुए आम चुनाव में मंत्री ने उन्हें हराया। यह भी कहा गया है कि उक्त चुनाव से पहले, राजस्व मंत्री ने हजारीबाग के जिला न्यायालय में मालिक के खिलाफ भारतीय दण्ड संहिता की धारा- 500 के तहत आरोप लगाते हुए एक आपराधिक मामला दर्ज किया था। उच्च न्यायालय ने 15 अप्रैल, 1952 के फैसले में उक्त मामले को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित करने की याचिका में यह स्वीकार किया कि मंत्री और मालिक के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्धिता थी। अंततः, इस न्यायालय ने उक्त आपराधिक मामले को बिहार राज्य से दिल्ली के मजिस्ट्रेट की अदालत की फाइल में इस आधार पर स्थानांतरित कर दिया कि दोनों व्यक्तियों के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्धिता थी। राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में इन तथ्यों का खंडन नहीं किया गया है। उक्त प्रति-शपथ पत्र में निम्नलिखित अप्रकट कथन हैः " याचिका के कंडिका-14(ख) में यह आरोप लगाया गया है कि, श्री कामाक्ष्य नारायण सिंह और तत्कालीन राजस्व मंत्री श्री कृष्ण बल्लभ सहाय के बीच कथित राजनितिक प्रतिद्वन्धिता थी जिसका इस मामले के तथ्यों पर अब तक के आदेशों से कोई लेना-देना नहीं है ।और इस हद तक आरोपों का खंडन किया जाता है "। अतः यह माना जा सकता है कि राजस्व मंत्री के खिलाफ व्यक्तिगत पूर्वाग्रह के आरोप से इंकार नहीं किया गया है । यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही उक्त राजस्व मंत्री के कार्यकाल के दौरान शुरू की गई थी और रद्द करने का वास्तविक आदेश उनके द्वारा दिया गया था। हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि राजस्व मंत्री का मालिक के खिलाफ व्यक्तिगत पूर्वाग्रह था और वह इस विश्वास पर भी काम कर रहे थे कि पट्टा उक्त मालिक के लिए केवल बेनामी था। हमें यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि राजस्व मालिक के प्रति उक्त राजस्व मंत्री का बुरा व्यक्तिगत पूर्वाग्रह था और उन्हौने जांच शुरू करने या लाइसेंस रद्द करने में भाग नहीं लिया है।

इस आधार पर कि अधिनियम की धारा-25 संवैधानिक रूप से वैध हैं, प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले में उस धारा के प्रावधानों का अनुपालन किया गया है। यदि उनका पालन नहीं किया जाता है, तो उक्त प्रावधानों का अपमान करते हुए राज्य सरकार का आदेश निश्चित रूप से याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करेगा। विवादित आदेश की वैधता पर मुख्य आपत्ति यह है कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता को यह कारण दिखाने का उचित अवसर नहीं दिया कि उसका लाइसेंस क्यों रद्द नहीं किया जाना चाहिए। खनन पट्टे की विषय-वस्तु 999 वर्षों की अवधि के लिए 3,026 गाँवों से संबंधित है । याचिका में आरोप लगाया गया है कि बड़ी मात्र में याचिकाकर्ता द्वारा खनन पट्टा प्राप्त करने के लिए 16 लाख रुपये खर्च किये गए और इसके अलावा खदानों की खोज और विकास में भी काफी खर्च किया गया । 7 मार्च, 1953 को बिहार सरकार ने राजस्व विभाग में अपने सचिव के माध्यम से याचिकाकर्ता को नोटिस जारी कर सुचना प्राप्ति के 15 दिनों के भीतर कारण बताने को कहा कि सरकार द्वारा अधिनियम की धारा- 25 (1) (ग) के तहत कार्यवाही कर क्यों नहीं खनिक लाइसेंस संख्या 261-एच को रद्द कर देना चाहिये। नोटिस में कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने मरहंद और सुल्ताना में उनके अभ्रक गोदामों के सम्बन्ध में धारा- 10 , 12 और 14 का का उल्लंघन, सिमरिया में गोदामों के सम्बन्ध में धारा-10 और 12 और कोवाबार गोदामों के सम्बन्ध में धारा-10 का उल्लंघन किया गया और इस प्रकार दोहराने की दोषी हैं, बिहार अभ्रक अधिनियम,1947 के उन प्रावधानों का अनुपालन करने में विफल रहा है। इस नोटिस की प्राप्ति पर, याचिकाकर्ता ने अपने पत्र दिनांक 20 मार्च, 1953 द्वारा, सरकार से उक्त नोटिस में निहित आरोपों के विवरण के साथ इसे प्रस्तुत करने के लिए कहा और 27 मार्च, 1953 को उक्त विवरण के लिए अपने अनुरोध को नवीनीकृत किया । 1 मई, 1953 को सरकार ने एक ज्ञापन सं. ए/एम.आई.-8022/53 आर याचिकाकर्ता कंपनी को अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन का विवरण भेजा । ज्ञापन का बिहार अभ्रक अधिनियम, 1947 के प्रावधानों का अनुपालन करने में बार-बार विफलता के रूप में वर्णित है । विवरण से पता चलता है कि 3 दिसंबर, 1952 और 11 दिसंबर, 1952 के बीच अभ्रक लेखा निरीक्षक ने याचिकाकर्ता के विभिन्न गोदामों का निरीक्षण किया और उल्लंघन पाया । ध्यान देने योग्य बात यह है कि निरीक्षण, हालांकि कुछ दिनों में किया गया, वास्तव में एक निरीक्षण था । अधिनियम के प्रावधान के अंतर्गत विभिन्न गोदामों

की स्थिति और खुलासा किए गए विवरण निष्पादित करने में तुलनात्मक रूप से तुच्छ चूक थे। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि कथित निरीक्षण से संबंधित विवरणों में से एक 6 मार्च, 1952 को किया गया था; और, उस निरीक्षण के संबंध में, याचिकाकर्ता पर मुकदमा चलाया गया था और दोषी ठहराया गया; लेकिन उक्त दोषसिद्धि के बावजूद लाइसेंस अगले दो साल के लिए नवीनीकृत किया गया था । इसलिए उस निरीक्षण का परिणाम यह नहीं है कि 7 मार्च, 1953 के नोटिस द्वारा शुरू की गई जांच, विवरण ज्ञापन देने के बाद बिहार अभ्रक अधिनियम, 1947 के खंड के प्रावधानों का पालन करने में बार-बार विफल रही और "यह स्पष्ट है कि कंपनी दोषी रही है" और इन आरोपों पर कंपनी को कारण दिखाने का निर्देश दिया गया था कि अधिनियम की धारा- 25 (1) (ख) के तहत लाइसेंस क्यों रद्द नहीं किया जाना चाहिए। धारा 25 (1) (बी) में कहा गया है कि राज्य सरकार किसी भी लाइसेंसधारी का लाइसेंस रद्द कर सकती है, जो "एक व्यक्ति होने के नाते जिसे खनिक का लाइसेंस दिया गया है, वह खदान से अभ्रक निकालता है जिसका विवरण उसके लाइसेंस पर समर्थित नहीं है।" विद्वान महाधिवक्ता द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि सरकार ने सी. एल. के तहत कार्रवाई नहीं की। धारा- 25 (1) (ख) और यह कि ज्ञापन में उस खंड का उल्लेख केवल था और अधिनियम की धारा-25 (1)(ग) सी.एल के लिए एक गलती। 17 मई, 1953 को याचिकाकर्ता ने सरकार को इसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में विस्तृत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया कि, इसने राज्य के साथ अपने स्पष्टीकरण की शुरुआत की कि माइका के निरीक्षक द्वारा सभी संबंधित लेखा पुस्तकों और स्टॉक बुक को जब्त कर लिया गया था। लेखा और बार-बार किए गए विज्ञापन अनुरोधों के बावजूद वापस नहीं किए गए थे और इसलिए जब पुस्तकों को वापस किया गया तो उन्होंने आगे प्रस्तुत करने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा। इसने यह भी बताया कि निरीक्षण के समय ऐसे मामलों के संबंध में सामान्य प्रक्रिया के अनुसार कथित अनियमितता की व्याख्या करने के लिए नहीं कहा गया था। इसके बाद उन्होंने सभी रिपोर्टों का जवाब दिया। उसके खिलाफ लगाए गए आरोप के सम्बन्ध में कंपनी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण प्रशंसनीय प्रतीत होता है और कथित उल्लंघन, भले ही सच हो, राज्य द्वारा की गई कठोर कार्रवाई के लिए बहुत मामूली प्रतीत होते हैं।

1954 में सरकार ने उक्त के खिलाफ मुकदमा दायर किया एक घोषणा के लिए मालिक कि उसके द्वारा अस्तित्व में लाई गई विभिन्न कंपनियाँ बेनामी और उसके द्वारा किए गए सभी विभिन्न लेनदेन फर्जी थे। याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के दो साल से अधिक समय बाद तक शांति रही। राज्य सरकार ने न तो लेखा पुस्तिकाएँ वापस कीं और न ही याचिकाकर्ता को आगे उप बनाने के लिए आमंत्रित किया। संबंधित अधिकारियों द्वारा जब्त किए गए खातों को देखने की अनुमति देकर अचानक 7 सितम्बर 1955 से, इस आशय की एक अधिसूचना जारी की गई थी कि बिहार के राज्यपाल द्वारा याचिकाकर्ता के लाइसेंस को रद्द करने में तुष्टि हुई । यह भी निर्देश दिया गया कि अभ्रक खदानों का संचालन तुरंत बंद कर दिया जाए और 12 सितंबर, 1955 को उनके गोदामों के सम्बन्ध में उपरोक्त खदानों से संबंधित खाते की पुस्तिकाएं पेश की जाए । उपरोक्त तथ्यों के विवरण से स्पष्ट है कि बड़े पैमाने पर अधिकारों को प्रभावित करने वाले लाइसेंस को कम से कम मामूली कारणों से रद्द कर दिया गया था । जांच मंत्री के नेतृत्व वाले विभाग द्वारा की गयी थी जो स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता के प्रति पक्षपाती था । कथित तौर पर कुछ गोदामों के निरीक्षण के दौरान नियमों की कुछ तकनीकी गैर-अनुपालन पाए जाने को लाइसेंस वापस लेने के बहाने के रूप में दिखाया गया था; याचिकाकर्ता को अपने खातों का निरीक्षण करने और खातों के संदर्भ में कथित चूक को स्पष्ट करने का कोई अवसर नहीं दिया गया । याचिकाकर्ता द्वारा अपना जवाब देने के बाद याचिकाकर्ता में झूठी सुरक्षा की भावना पैदा हुई और दो साल की अवधि के बाद सरकार ने लाइसेंस रद्द करने की अधिसूचना जारी कर दी । इस बीच, धनुष की दुसरी कड़ी के रूप में, राज्य ने पट्टे को बेनामी घोषित करने और अन्य राहतों के लिए मालिक के खिलाफ मुकदमा दायर किया । इस जांच में राजस्व मंत्री का छिपा हाथ नजर आ रहा है । मालिक और राजस्व मंत्री के बीच राजनीतिक प्रतिद्वंधिता के कारण कार्यवाही शुरू की गयी थी । हालांकि भारी दांव शामिल थे, फिर भी जांच इस तरीके से की गयी कि याचिकाकर्ता को अपने आचरण स्पष्ट करने और अपने खिलाफ लगाये गये आरोपों को खारिज करने का याचिकाकर्ता को कोई वास्तविक अवसर नहीं दिया और लाइसेंस को रद्द करने का आदेश यह स्वीकारोक्ति उसी राजस्व मंत्री द्वारा की गयी थी, जो जांच के पीछे था। इन परिस्थितियों में, हमें यह मानना चाहिए कि अधिनियम की धारा-25 (1) के दुसरे प्रावधान के अर्थ में याचिकाकर्ता को कोई उचित अवसर नहीं दिया

गया था। इसके अलावा, राज्य सरकार ने यह नहीं पाया कि ऐसी याचिकाकर्ता किसी भी प्रावधान का पालन करने में बार-बार विफलता का दोषी था । सरकार द्वारा प्रस्तुत विवरण में ऐसी किसी भी बार-बार विफलता का खुलासा नहीं किया गया । अधिनियम की धारा -25 (1) (सी) के अनुसार, लाइसेंस रद्द करने के लिए अधिनियम के किसी भी प्रावधान का पालन करने में बार-बार विफलता एक आवश्यक शर्त है। उक्त खंड के अधीन जब तक उस खंड के अर्थ के भीतर बार-बार विफलता नहीं होती है, तब तक राज्य सरकार के पास लाइसेंस रद्द करने की कोई शक्ति नहीं है। इसके अलावा, न तो कार्यवाही शुरू करने वाले नोटिस में और न ही अधिसूचना में सरकार द्वारा जारी लाइसेंस को बेचने के लिए यह था कहा कि याचिकाकर्ता कथित खंड के अर्थ के भीतर "बार-बार" विफलता का दोषी था। लेकिन प्रस्तुत विवरणों में, राज्य सरकार ने आरोप लगाया कि याचिकाकर्ता अधिनियम के प्रावधानों का पालन करने में बार-बार विफलता का दोषी था, लेकिन विवरण उस कथन का समर्थन नहीं करते थे, क्योंकि मार्च, 1952 के चूक के अलावा, कथित 3 दिसम्बर, 1953 और 11 दिसम्बर, 1953 के बीच कुछ गोदामों के निरीक्षण के दौरान ही अभ्रक लेखा निरीक्षक द्वारा नियमों के उल्लंघन का पता चला था । उस एक निरंतर निरीक्षण का परिणाम यह मानने का आधार नहीं हो सकता कि याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा-25 (1)(सी) के अर्थ के भीतर "बार-बार विफलता" का दोषी था। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि याचिकाकर्ता को मार्च, 1952 के बाद किसी अन्य अवसर पर अधिनियम के किसी भी प्रावधान के उल्लंघन का दोषी पाया गया था । याचिकाकर्ता पर अधिनियम की धारा- 10,12 और 14 के प्रावधानों के एकमात्र अभियोजन के अलावा, जिसे हम पहले ही देख चुके हैं, किसी अन्य उल्लंघन के लिए मुकदमा नहीं चलाया गया था। अभियोजन को सेवा में नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि राज्य सरकार ने 1953-54 के लिए लाइसेंस का नवीनीकरण किया था । अभिलेख की इस स्थिति में हमें यह मानना होगा कि प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रहे कि याचिकाकर्ता अधिनियम के प्रावधानों का पालन करने में बार-बार विफलता का दोषी था। उक्त निष्कर्ष के आधार पर, उत्तरदाताओं के पास धारा-25 (1)(ग) के तहत कार्यवाही करने की कोई शक्ति नहीं होगी।

उपरोक्त विश्लेषण यह स्थापित करती है कि न तो सरकार को 25(1)(ग) के तहत कार्रवाई करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक शर्त स्थापित की गयी है और न ही याचिकाकर्ता को धारा- 25(1) के दुसरे परंतुक के तहत उचित अवसर प्रदान किया गया है ।

परिणामस्वरूप हम याचिका स्वीकार करते हैं और याचिकाकर्ताओं के पक्ष में और उत्तरदाताओं के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट जारी कर बिहार सरकार के दिनांक 01 सितम्बर 1955 के खनिक लाइसेंस संख्या 1951 वर्ष का 261-H रद्द करने के आदेश को रद्द करते हैं । उत्तरदाता याचिकाकर्ता को लागत का भुगतान करेंगे।

याचिका को स्वीकार किया जाता है ।

1.[1952] एस० सी० आर० 597

2.[1953] एस० सी० आर० 1049